International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 880-882

लोकनाटयों में प्रयुक्त राग तथा धुन

डॉ. सरस्वती चतुर्वेदी
असीसटैंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा, भारत।

प्रस्ताबना

रागों के मूलरूप देशी रागों की धुनों में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। राग की यह विशेषता है कि वह निश्चित स्वरों में, नियमों में बांधकर गाई जाती है। गायन शैली का ढंग भिन्न–2 प्रकार का हो सकता है परन्तु फिर भी वे राग के नियमों तथा स्वरों के बाहर नहीं जाते। सुनने वाले भी महसूस कर लेते हैं कि एक ही राग भिन्न–भिन्न तरीकों से गाई जा रही है परन्तु उनका बीज एक ही होता है। घुमाने फिराने की बहुत गुंजाइश होती है परन्तु धुन में विस्तार तथा घुमने की गुंजाईश राग की अपेक्षा कम होती है। साधारण नायक किसी विशिष्ट धुन को भी एक ही प्रकार से गाते हैं परन्तु विशेष प्रतिभावान गायक कलाकार उस धुन के आस–पास के स्वरों में घुमकर तथा विस्तार करके राग का स्वरूप स्पष्ट करने की भी क्षमता रखते हैं और ऐसा करते भी हैं परन्तु घूम फिर कर मूलधुन की है पुनरावृति होती रहती है, क्योंकि धुन में भी राग की तरह एक बीच होता है, तत्व होता है एंव अंग होता है। इस प्रकार जिन धुनों में विस्तार की तथा घुमने की गुंजाईश अधिक होती है उनसे रागों की निर्मित सम्भव है और वे धुनें राग के रूप में भी प्रचलित हो जाती है परन्तु जिसमें विस्तार की गुंजाईश कम होती है वे धुनें केवल धुनें ही रह जाती है, जिन्हें 'धुन'' अथवा 'तर्ज' की संज्ञा दी जाती है परन्तु वे धुनें लोकजीवन में इतनी समाई हुई है कि इनके मूलरूप को बदलना किसी भी हालत में जनता को सहा नहीं है। इस प्रकार इन धुनों के विस्तार के आधार पर राग निश्चित नहीं किया जा सकता कि कौन सा राग है परन्तु जब मूलधुन के आसपास घूमकर तथा विस्तार कर पुनः टेर में आते हैं तब राग का आभास मिलता है जो कि राग का केवल आभास मात्र है, निश्चित राग नहीं।

मार्गी संगीत

जिसका प्रयोग महादेव जी के बाद भरत ने किया। अति प्राचीन तथा कठोर सांस्कृतिक व धार्मिक नियमों से जकड़ा होने के कारण आगे जाकर इसका प्रचार कम हो गया, क्योंकि इसमें नियमों का अनुशासन होने से इसका विकास विशिष्ट नियमों के आधार पर ही होता है जबकि देशी संगीत को कठोर नियमों का बंधन नहीं जकड़ पाता। जनरूचि के आधार पर उसमें सरलता से परिवर्तन हो सकता है। देशी संगीत अथवा लोक संगीत का उद्देश्य मनोरंजन का होने के कारण चपल, चंचल तथा उन्मुक्त झरनों की भांति सदैव ताजगी एंव नवीनता धारण किये हुए होता है। शास्त्रीय संगीत अथवा अपना सौन्दर्य तथा जीवन रस देशी संगीत से ही प्राप्त करता है। देशी संगीत, परिवर्तनशील जनरूचि के कारण शास्त्रीय संगीत को नित्य नूतन सौन्दर्य और नवीनता देता रहता है और इसी नवीनता के कारण शास्त्रीय संगीत समृद्ध बनता है तथा इस आस्तित्व के लिए शास्त्रीय संगीत देशी का सदैव आभारी है।

देशी संगीत

देशी संगीत देश के सभी भागों में छोटे–बड़े जिसे प्रेम पूर्वक गा बजा सकते हैं तथा अपना मन प्रसन्न कर सकते हैं उसे देशी संगीत कहा जाता है। पं.शारंगदेव के समय भी देशी संगीत सर्वत्र प्रचलित था। किन्तु वर्तमान हिन्दूस्तानी संगीत से वह सर्वथा भिन्न था। इसका कारण यह है कि देशी संगीत सर्वदा परिवर्तनशील रहा है। लोकरूचि के अनुसार उसका स्वरूप बदलता रहता है। देशी संगीत को नियमों का विशेष बन्धन नहीं है। वह सुल्भ–सरल तथा लोकरूचि पर अवलंबित है। पं.शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में लिखा है।

देशे देश जनानां यद्रूच्या हृदयरंजकः
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यधीयते।

अर्थात भिन्न–भिन्न देशों के जन अपनी–अपनी रूचि के अनुसार गा बजाकर तथा नाचकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं अथवा रंजन करते हैं उसे देशी संगीत कहा जाता है। मार्गी संगीत की तुलना संयतता और गम्भीरता की वजह से गंगा नदी के धीरे गम्भीर प्रवाह से की जाये तो देशी संगीत की तुलना पहाड़ी प्रदेशों में उन्मुक्त रूप से प्रवाहित होने वाले, कलकल विवाद करने वाले छोटे–छोटे झरनों से की जा सकती है।

राग पणिहारी अथवा धुन परिणहारी

राग पणिहारी राजस्थान के प्रसिद्ध लोकगीत पणिहारी धुन में गाई जाती है। राजस्थान की लोक धुनों में पणिहारी की मनमोहक धुन इतनी समा गई है कि परिणहारी गीत कहते लोक कलाकारों ने इसे राग पणिहारी की ही सज्ञां दे डाली। राजस्थानी ख्यालों में भी इस धुन में जो भी संवाद गीत गाये जाते हैं उन्हें ''राग पणिहारी'' के नाम से पुकारा जाता है। अतः यह एक ''धुन प्रधान'' राग है। गीतों की रानी पणिहारी राजस्थानी लोकगीतों की सिरताज मानी गई है। पानी भरने वाली स्त्री को पणिहारी कहते हैं।

राग धमाल होरी

राजस्थान की क्या भारत में होली के अवसर पर सबसे अधिक अधमबाजी होती है। ''धमाल'' का अर्थ है अधमबाजी और होली क हुड़दंग में अधमबाजी का ही बोल बाला रहता है परन्तु संगीत के अभिप्राय में इसका अर्थ होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों से लिया जाता है। होरी गीत प्रायः राग काफी में अधिक सुने जाते हैं। होरी गीत लोगगीतों की ही श्रेणी में आते हैं। होरी गीत होली के अवसर पर मंदिरों में भी गाये जाते हैं। ब्रज के भी होरी गीत बहुत प्रसिद्ध हैं जो कि विविध रागों में गाये जाते हैं।

राग होरी
धमाल होरी की धुन में तथा राग होरी की धुन में कुछ अन्तर मिलता है। यह धुन भी राजस्थान के प्रसिद्ध होली गीत ''फागण आये फागणें रंगादो रसिया, होली खेलो रसिया'' की धुन पर आधारित है। इसी धुन में जो भी गीत लोकनाट्यों में गाये जाते हैं उन्हें राग होरी की संज्ञा दी जाती है।

राग काफी
राग काफी बहुत पुराना राग है यह देसी रोगों के अन्तर्गत ही माना गया है। प0 भातखण्डेजी जी की मान्यता है कि ''लगभग 400 वर्ष से संगीत में यह राग है। प0 लोचन की ''राग तरंगिणी'' में भी इसका नाम आया है''।
इसके स्वर इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसके सप्तक के स्वर भरत के सप्तक में प्राप्त होते हैं और आज तक जितने भी स्वर सप्तक बने हैं उन सब में यह दोष रहित सप्तक है।

राग मांड
राजपूताने के शिलालेखों में मांड प्रदेश जैसलमेर राज्य का सूचक माना जाता है और जैसलमेर वाले अब तक भी अपने देश को ''मांड'' कहते हैं। श्री भातखण्डे जी भी मांड राग का उद्‌गम स्थल राजपूताना (राजस्थान) और मालवा प्रान्त में मानते हैं। यह राग काफी पुराना और राजा–महाराजाओं के दरबार में भी गायकों द्वारा बहुधा गाया जाता था। रजवाड़ी माडं गायकी में लयकारी, छोटी–छोटी मुर्किया तथा शब्दों की अदायगी बहुत सुन्दर बन पड़ी है। राजस्थान प्रदेश में आज भी यह राग सर्व साधारण में प्रचलित है तथा प्रत्येक समय गाया जाता है।

राग मेवाड़ा
राजस्थान के ही मेवाड़ प्रदेश से इसकी उत्पति मानी जाती है। भातखण्डे जी की मान्यता है कि यह मांड का ही एक भेद है। इसके नाम से यह ज्ञात होता है कि राग भी राजपूतानों के ग्राम गीतों (Folk Songs) में से एक है। इसका विस्तार तार सप्तक में विशेष नहीं होता। गुजरात प्रान्त के रास (गरबा) आदि गीत अधिक तादाद में इसी राग में सुनने को मिलते हैं। यह राग बिलाबल ठाठ का है। जैसलमेर के राजा की रम्मतों में प्रारम्भ में मंगलाचरण जो गाया गया है वह राग मेवाड़ में है।

राग मारू
मारू शब्द मरू प्रदेश का सूचक माना जाता है। मरू प्रदेश मरूस्थली अर्थात रेगिस्तान को माना गया है। व्यवहारिक क्षेत्र में मरू नाम मारवाड़ अर्थात जोधपुर राज्य का सूचक माना जाता है।
बिलावल थाट के जो राग मांड मेवाड़ा है उनके संग का ही यह राग है। लोकनाट्य गीतों की रचनाओं में राग मारू का वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है।

राग जंगला
राग जंगला का सम्बन्ध जांगल प्रदेश में माना जाता है। जहां जल तथा हरियाली कम वायु तथा धूप की प्रबलता हो वह प्राचीन काल में जंगाल प्रदेश कहलाता था। वर्तमान में सारा बीकानेर, नागौर तथा मारवाड़ का उतरी सभी हिस्सा जांगल प्रदेश समझना चाहिए। राजस्थानी लोकनाट्यों में प्रयुक्त होने वाले धुन जंगला के समान ही राग जंगला का स्वरूप आसावरी थाट के अन्तर्गत आता है।

राग सोरट
राग सोरट का उद्‌गम सौराष्ट्र प्रदेश से माना जाता है। अतः यह भी लोक रागों के अन्तर्गत आती है और लोक धुनों में इसका काफी मात्रा में प्रयोग देखा जाता है। सौराष्ट्र नाम का ही स्वरूप बदलते–बदलते सोरट राग का नाम पड़ गया।

राग देस
सोरट की तरह ही देस भी लोक धुनों का अत्यन्त लोकप्रिय प्रचलित देशी राग है। इस राग का स्वरूप सोरठ राग के समान दिखाई देता है। देस और सोरठ समप्राकृतिक रागें हैं। देस राग में गंधार स्पष्ट रूप से लिया जाता है। जबकि सोरठ में असत् प्राय ढका हुआ रहता है। इसके आरोह में गंधार, धवैत प्रायः नहीं लेते।

राग पहाड़ी
राग पहाड़ी का भी लोकनाट्य गीतों में खूब प्रयोग हुआ है। राग पहाड़ी में मध्यम और निषाद स्वर दुर्बल होने से किंचित्‌मात्र भूपाली की छाया जाती है परन्तु अवरोह में थोड़ा मध्यम लगा देने से अलग हो जाती है। इस राग का विस्तारमंद्र और मध्य सप्तक में भूपाली से अलग हो जाता है। इस राग का विस्तार मंद्र और मध्य सप्तक में ही अच्छा लगता है। इस राग में मध्यम को सा मान कर गाने से इस राग का गन्धार भूपोली का धैवत हो जाता है। मंद्र सप्तक के धैवत पर विश्रांति इस राग की विशेषता है।

राग पीलू
राग पीलू अधिक प्राचीन नहीं है क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में इसके बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई है। यह काफी थाट का राग माना जाता है। कुछ विद्वान इस राग न मानकर ''धुन'' ही मानते हैं। परंतु इसे देशी राग मानने में कोई हर्ज नहीं है क्योंकि यह बहुत लोकप्रिय राग है तथा रजक भी काफी है तो फिर ''रंजयतीइतिराग'' के आधार पर इसे राग ही मानन होगा पहाड़ी की तरह पीलू भी मध्यम को सा मानकर गाया जाता है। इससे इसकी रंजकता बढ़ जाता है। राग पीलू देश गीतों की ''धुन'' का ही परिष्कृत रागरूप है क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में भी इसका प्रमाण नहीं है परन्तु लोकप्रिय भी बहुत है। राजस्थानी लोकनाट्यों गीतों में भी पीलू का मूल रूप देखने को मिलता है क्योंकि इन रोगों का मूलरूप देशी धुनों में ही मिलता है।

राग झिंझोटी
लोक गायकी में राग झिंझोटी बहुत प्रचलित है। झिंझोटी नाम अधिक पुराना नहीं है। यह लोक गायकी में अधिक आता है, क्योंकि इसमें ध्रुपद या ख्याल आदि नहीं गाते अपितू गीत, गजल, ठुमरी आदि ही विशेषतः प्रचार में है। इसमें नियमों की विशेष उलझन नहीं है। राजस्थानी लोकनाट्यों के गीतों में भी झिंझोटी का प्रयोग खूब खुलकर हुआ है।

राग कालंगड़ो
राग कालंगड़ो का परिष्कृत रूप ही हमारी शास्त्रीय राग कालिंगड़ा में परिलक्षित होता है। पं. भातखण्डे जी के अनुसार भैरवथाट के इस राग का स्वरूप बिलकुल सीधा व सरल है। धैवत या गंधार वादी संवादी मानते हैं किन्तु कुछ विद्वान वादी पंचम तथा संवादी षड्‌ज मानते हैं। कुछ गायक इसे गाते समय बहुधा ''परज' राग से इसे बड़ी सुन्दरता से मिला देते हैं। यह मिश्रण बड़ा ही कर्णप्रिय मालूम होता है, क्योंकि दोनों ही समप्राकृतिक राग है।
राग कालिंगड़ा की उत्पति के बारे में विद्वान इसे ''कलिंग'' देश की ओर से आया हुआ तथा ''डा'' जोड़ा हुआ बतात हैं इसे लोक गायक ''कालंगड़ो'' अथवा ''कालंगड़ा की परज'' कहकर पुकारते हैं

और उसमें परज का मिश्रण करके गाते हैं। अतः यह अवश्य ही लोकप्रिय लोक राग रही है जिसे हम राग कालिंगड़ा का शास्त्रीय नाम देते हैं, क्योंकि ये लोक धुनों ही परिष्कृत हो शास्त्रों द्वारा शास्त्रीय रूप धारण करती है।

राग आसावरी

राग आसावरी भी राग काफी की ही भांति अत्यंत सरल एंव लोकप्रिय राग उहै, जिसका कि नाट्य गीतों में खूब प्रयोग हुआ है। प्राचीन रूप के अनुसार कहीं–कहीं आसावरी में कोमल रिषभ भी लेते हैं। आसावरी के आरोह में गंधार तथा निषाद स्वर वर्जित करते हैं। इसके नजदीक के राग गंधारी तथा देसी है।

राग मालकौंस

राग मालकौंस भी लोकधुनों का अत्यन्त लोकप्रिय राग है। यह छोटे मोटे सभी लोककलाकारों द्वारा गीतों में प्रयुक्त किया जाता है और सभी को आता है। इसमें रिषभ तथा पंचम स्वर वर्जित होने से औडव जाति का राग कहलाता है। कुछ इसे भैरवी ठाठ के अन्तर्गत तथा कुछ विद्वान इसे आसावरी थाट का भी बताते हैं। इसका गायन समय मध्यरात्रि में होने से रात्रि के समय होने वाले नाट्यगीतों में इसका काफी प्रयोग होता है। नाट्यरचनाकारों ने अनेकों स्थानों पर मालकौंस राग में नाट्गीत गाने के निर्देश दिए हैं जैसे –कवि लच्छीराम कृत ''गोग चौहारन'' के ख्याल में गोगाजी की पत्नि सरियलदे पीहर जाते हुए राह में से वापस लौट आती है। जब गोगा जी उसका कारण पूछते हैं तो वह बताती है कि गोगाजी के मौसेरे भाई अरजुन सरजुन ने राह में उनके जेवर व कपड़े लूट लिए–लोकप्रिय राग है। अतः सभी गायक इससे परिचित है।

राग भैरवी

राग भैरवी भी लोकनाट्य कलाकारों की अत्यन्त प्रिय राग है और प्रायः सभी गायकों को आता है। इस राग में भी ख्याल की अपेक्षा गति, गजल, भजन, ठुमरी, टप्पा ही प्रायः गाये जाते हैं और इसका गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर अथवा प्रातः काल है। इससे नाट्य की समाप्ति अथवा बीच में भी बहुतायत से इसका प्रयोग नाट्य गीतों में किया जाता है। यह राग सम्पूर्ण है। इसमें ऋषभ, गन्धार, मध्यम, धैवत तथा निषाद सभी स्वर कोमल लगते हैं। वादी संवादी मध्यम षड्ज है। कुछ विद्वान इसे हर समय का अर्थात् सार्वकालिक राग भी कहते हैं। इसके आरोह में कभी–कभी तीव्र ऋषभ का प्रयोग भी मिलता है तथा कुछ इसमें बारहों स्वर भी लगाते हैं। लोक गायकों में ऐसा क्षम्य है परन्तु वह राग नियमों के अन्तर्गत नहीं है। कोई कोई गुणीजन इसमें वादी संवादी धैवत गंधार भी मानते हैं। दोनों ही मत प्रचार में है शास्त्रीय संगीत की महफिल भी प्राय भैरवी राग से समाप्त होती देखी जाती है। सिन्ध भैरवी तथा आनन्द भैरवी इसी के विभिन्न रूप है। राजस्थानी लोकनाट्य रात्रि में देर तक चलते हैं। अतः गायक मध्य रात्रि की रागों जैसे– मालकौंस, भैरवी आदि का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते हैं।

सन्दर्भ

1. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ला, नाट्यशास्त्रम् (भाग चार), चौखम्भ संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1985, पृ.स.338
2. गर्ग, मुकेश, पत्रिका संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस, दिसम्बर, 2005, पृ.सं.18
3. सिंह, वन्दना, ब्रज की संगीत परम्परा, राधा पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, 1996
4. नन्दिकेश्वर, अभिनय दर्पण, (Internet-www.google.com), पृ. सं.2
5. वाजपेयी, रश्मि, कत्थक प्रसंग, (Internet-www.google.com), पृ.स.44
6. पांडे, उमेश, मास एंव भास एं भवभूति के नाटकों में रस तत्व, विद्या निधि प्रकाशन, दिल्ली, 1999, पृ.स.18
7. शर्मा, लवली, खींची ईश्वर सिंह, राजस्थानी लोकगीतों की शास्त्रीयता, राधा पब्लिकेशंस 2004, दिल्ली, पृ.स.94
8. पाठक, सुनदा, हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पति एंव विकास, राधा पब्लिकेशनंस 1989, नई दिल्ली, पृ.स.2
9. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, (भरत नाट्य शास्त्र, 28वां अध्याय, पृ.सं.70) निबन्ध संगीत, हाथरस संगीत कार्यालय, 1978 पृ.स.263
10. मेहता, ज्ञानावती वैद, लोकनाट्यों में संगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर, 2003, पृ.स.72
11. मेहता, ज्ञानावती वैद, लोकनाट्यों में सगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर 2003, पृ.स.75
12. सामर, देवीलाल, राजस्थानी लोकनृत्य, भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, 1956, पृ.स.4
13. सामर, देवीलाल, भारतीय लोकनाट्यः वस्तु और शिल्प, भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, 1976, पृ.स.8
14. सामर, देवीलाल, राजस्थानी लोकनृत्य, भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, पृ.स.5
15. मेहता, ज्ञानावती वैद, लोकनाट्यों में सगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर 2003, पृ.स.89